भ्रम

पांडेय बेचन शर्मा

हिन्दी ADDA

भ्रम

https://www.hindiadda.com/bhram/

बात पुरानी है, बहुत पुरानी।

मनुष्य कुछ-कुछ सयाना हो चला था। माता मनुष्यता की छाती पर अपने छोटे-छोटे, सुकुमार अंगों को उचक-उचककर चाव और चपलता से पुटक लेने और उसकी पय-गंगा में विस्मय-विमुग्ध भाव से पुलक-पुलककर गोते लगा लेने के बाद - अभी-अभी - वह माता मही के विशाल वक्ष:स्थल पर, ठुमक-ठुमक गति से, उतरा था।

उसके नेत्र किनारेदार थे, नव-नीतोज्ज्वल, कमल-दलायत। जब वह आश्चर्य-अवाक् होकर अनभ्र आकाश पर दृष्टि डालता, तो उन आँखों का अनोखा क्षीर-समुद्र, नव-नील-नीर-समुद्र-सा लहरीला दिखाई पड़ता।

मालूम नहीं आश्चर्य से, अवशता से, अज्ञान से या किससे उसकी आँखों में आँसुओं का ज्वार उमड़ आता।

आकाश के नीलांचल में जैसे वह अपना कोई 'पुराना परिचय' ढूँढ़ता; पर कुछ निश्चित न कर पाता कि भ्रम से खेल रहा था या सत्य से।

वह अक्सर लंबी-लंबी साँसें खींचकर दार्शनिक की तरह गंभीर भाव बनाता, हवा को सूँघता, जैसे कुत्ता किसी पूर्व-परिचित वस्तु को एकाएक सामने पाकर सूँघे। पर कुछ ठीक-ठीक समझ न पाता। हँसने लगता - मंद, अमंद, किलकिल, कलकल! शायद अपनी मूर्खता पर।

आकाश को ताककर, हवा को सूँघकर भी जब उसकी ज्ञानेच्छा पूर्ण न होती, तो प्रायः मेदिनी के स-रज अंचल में वह लोट-पोट! खलास हुए नशैल की तरह। और छोटी तथा लाल जीभ निकालकर वसुंधरा की विभूति का स्वाद लेने लगता। वह मुस्किराता, मानो - 'अब पहचाना!' मगर तुरंत ही पुनः गंभीर होता नजर आता - चौंककर धूलि-धूसरित मुख एक ओर फेरकर देखता - 'ओ...अ...अ...अ, मा - मम्मा!'

मनुष्य की 'मम्मा' अक्सर उसे इस विभूति-विलास के लिए दंड देती।

और मनुष्य हँसता।

मम्मा रोती, कहती - 'इस अभागे को विभूति ही में रस मिलता है - हे भगवान!'

'हे भगवान!' मनुष्य ने पहलेपहल सुना। अब वह काफी सयाना हो चुका था।

'माँ!' उसने पूछा - 'हे भगवान का अर्थ? यह किसका नाम है?'

'सर्व-शक्तिमान, सहस्र-पादाक्षि शिरोरुबाहु परमात्मा ही का नाम भगवान है बच्चे! वही हमारे कर्ता, धर्ता, हर्ता हैं।'

'झूठ!' उगते हुए मनुष्य ने माता मनुष्यता के अर्थ का विरोध किया - बाजारवाले कहते थे - 'भगवान मेरा नाम है।'

'हा-हा-हा!' करुणामयी जननी बालक की मूर्खता पर मनोहर मोह से हँस पड़ी। आगे बढ़कर उसने मनुष्य को गोद में भर लिया, चूमने लगी - 'बेटा! बाजारवाले ऐसे ही अर्थ का अनर्थ किया करते हैं।'

'तो मेरा नाम भगवान नहीं है।'

'नाम-भर है; यह भी उसकी याद ताजी रखने के लिए। मगर सत्यतः वह समुद्र है - तू एक बिंदु। तू आत्मा है, वह परमात्मा।'

माँ की बातों से मनुष्य को संतोष नहीं हुआ। बाजारवालों ने उसे मजे में समझा दिया था कि भगवान वही है।

'वे कहते थे - विद्वानों ने शास्त्रों का निरीक्षण करने के बाद मुझे 'भगवान' विघोषित किया था। और विद्वान लोग गुणानुसार ही तो नाम रखते होंगे? तू मुझे जानती नहीं है अम्मा! भगवान तो मैं ही हूँ।'

'नहीं बेटे! तू भगवान का प्रसाद है, दास है, उसके दया-सागर की एक प्रेम-पुलकित लहर है।'

'नहीं, मैं भगवान हूँ, मैं भगवान हूँ।' कहकर मनुष्य आँगन में लोटने लगा। हठ कर रोने लगा कि माँ उसे भगवान मान ही ले।

माँ भी पिघल गई। उसने सोचा - ठीक ही तो कहता है, घट-घट-व्यापी राम!

मनुष्य को पुनः गोद में उठाकर माँ ने देखा, उसकी आँखों में आँसू भरे थे!
'अच्छा-अच्छा!' वह सजग होकर उसे शांत करने लगी - 'रो मत लाल! मैं तो हँसी करती थी। बाजारवाले सच कहते थे। तू ही भगवान है। मेरा भगवान!'

माँ की आँखों से मौलसिरी के फूल-से धवल दो अश्रु-बिंदु भगवान के छोटे-छोटे चरणों पर गिरकर तल्लीन हो गए।

शक्तिमान होने पर बाजारवालों ने देखा, वह मनुष्य असाधारण शक्तिमान था।

माँ, मनुष्यता के अन्य बच्चे जहाँ भी उस मनुष्य को पाते, दीप-पतंग-सी हालत कर देते। सभी उस पर मुग्ध होकर उसके चारो ओर मँडराने लगते।

'बृहस्पति की तरह तू विद्वान है।'

'इंद्र की तरह बलवान। ओहो! क्या आजानु-प्रलंबित बाहु हैं।'

'तू चाहे, तो आकाश चक्कर में आ जाय।'

'तू कोप कर काल-करताल-क्रीड़ा करने लगे, तो यह जमीन पीपल के पत्ते-सी हिल उठे!'

'तू ही पुरुषोत्तम है, हमारा नेता है।'

मनुष्य गर्व-गंभीर भाव से दूसरे मनुष्यों की ओर देखता रहा। आँखों-ही-आँखों वह अपने भक्तों से बोल रहा था - 'सच पहचाना तुमने, मैं 'वही' हूँ।'

उसकी नजर अपनी भुजाओं पर गई, जो भरपूर गँठीली और साधारण प्राणियों की छाती-सी चौड़ी थी।

और, उसकी छाती कितनी चौड़ी थी? पहाड़-इतनी!

बाजारवालों ने बतलाया -

इस द्वीप के आगे सिंह-द्वीप है, उसके आगे प्रवाल-द्वीप, जिसके शासक यक्ष हैं। फिर मणि-द्वीप, जहाँ नागों का राज्य है। मणि-द्वीप के आगे वह महान द्वीप है, जिसे लोग 'सुवर्ण-द्वीप' कहते हैं, क्योंकि वहाँ के सभी प्राणी मुलायम सोने के बने हैं। उस द्वीप की प्रत्येक चीज खालिस सोने की होती है। नदियों में सोना बहुत है, उद्यानों में सोना फूलता है। सोने के वृक्षों पर सोन चिरैया चारों ओर चहकती सुनी जाती हैं। वहाँ के लोग सोना खाते हैं, सोना जोतते-बोते हैं और सदैव स्वर्ण-सज्जित वातावरण में विचरण करते हैं!

बाजारवालों ने उकसाया -

हे भगवान! हम साधारण प्राणी सुवर्ण-द्वीप तक नहीं जा सकते। दस-बीस मनचलों ने कभी उधर जाने की चेष्टा भी की, तो शायद वे सिंह-द्वीप ही तक - सिंहों के जल-पान की तरह - पहुँच सके।

और, तू तो भगवान है। तेरे लिए सुवर्ण-द्वीप तक जाना, और वहाँ से देवी स्वर्णमयी को स्वदेश ले आना - घर-घर सोना फैला देना, साधारण-सी बात है।

बाजारवालों ने समझाया -

भगवान! सिंह, प्रवाल, मणि आदि द्वीपों पर विजय कर जो कोई सुवर्ण-द्वीप जाता है, वहाँ वाले उसकी बड़ी खातिर करते हैं। उसके आगमनोपलक्ष्य में, सात दिनों तक, सुवर्ण-द्वीप के सातों महानगर सोने की होली खेलते हैं, और सात रातों तक सोने की दीवाली देदीप्यमान होती है। जब विजयी स्वदेश लौटता है, तो वहाँ वाले एक कुमारी कन्या उसे उपहार में देते हैं, और 'स्वर्णस्रष्टा' की पदवी। और, स्वर्णकुमारी जिस द्वीप में पधारती हैं, उस द्वीप के अहोभाग्य!

आँखों में आँसू भरकर, भक्ति-विभोर-भावेन बेचारे बाजारवाले मनुष्य के चरणों पर गिर पड़े -

'हे भगवान! तू ही हमें सोना दे सकता है। तू ही स्वर्ण-कुमारी को स्वदेश में ला सकता है।'

भगवाने के चेहरे से पता चलता था कि आशावादिता का रंग गुलाबी होता है, हल्का।

सिंह-द्वीप - पराजित। भगवान नृसिंह थे। सिंहों ने दुम दबाकर उनकी गंभीर स्तुति की, और उपहार में उन्हें एक रथ दिया, जो हाथी-दाँत का बना और गज-मुक्ताओं से मंडित था। उस रथ में सात महान सिंह जुते थे। सिंह-रथ ही पर सुवर्ण-द्वीप में प्रवेश किया जा सकता था।

भगवान के नेतृत्व में चलनेवाले मनुष्यों ने सिंह-सम्राट के संधि-पत्र पर हस्ताक्षर कराए कि भविष्य में सिंह मनुष्यों के प्रति सदैव अहिंसात्मक रहेंगे। संधि-पत्र की एक प्रति, मनुष्यों के नेता, भगवान के पीतांबर के एक कोने में बाँध दी गई।

आगे के यक्ष थे, पक्ष-धर। भगवान को विपक्ष बनाना उन्होंने भी मुनासिब न समझा।

फिर संधि-पत्र की तैयारी, फिर हस्ताक्षर! अब ऊपर से मनुष्यों पर आक्रमण न हो सकेगा।

यक्षपति ने नेता भगवान के सिंह-रथ के लिए एक सारथी दिया। वह प्रवाल की तरह लाल-लाल था। नाम था - 'रक्तासुर'।

अंत में, साष्टांग प्रणाम करते हुए, यक्षपति ने भगवान को बतलाया - 'यह रक्तासुर ही सुवर्ण-द्वीप तक आपका सिंह-रथ ले जा सकता है, क्योंकि यह अमर है। युद्ध में गर्दन कटते ही पुनः अरिमर्दन हो उठता है।'

पराजित नागों ने सिंह-रथ-संचालन के लिए भगवान को सर्प-विनिर्मित एक चाबुक दिया। साथ ही संधि-पत्र में प्रतिज्ञा की कि जब नेता भगवान स्वर्णकुमारी के साथ सविजय लौटेंगे, तब नागों द्वारा सिंह-रथ में सहस्र-सहस्र मणियाँ मंडित की जाएँगी।

अब नेता भगवान के पीताबंर के तीनों छोरों में एक-एक गाँठ थी, और प्रत्येक गाँठ में एक संधि-पत्र।

भगवान अति प्रसन्न-वदन थे इस आशा से कि शीघ्र ही पीतांबर के चौथे कोने में भी सोने का संधि-पत्र बँधेगा!

सुवर्ण-द्वीप में कोलाहल। स्थान-स्थान पर सुवर्ण-सुंदरियाँ रसीले राग गा गाकर अनोखे स्वदेशीय नाच नाच रही थीं।

सातों महानगर दूल्हों-से सजे थे। चारों ओर एक ही चर्चा चल रही थी - कोई आनेवाला है। बहुत दिनों बाद ऐसा अवसर आया है, जब स्वर्णकुमारी, किसी योग्य अधिकारी के साथ, अन्य संसारियों को सोने का श्रवण-सुखद संवाद सुनाने जाएँगी। इससे हमारे प्यारे सुवर्ण-द्वीप की महिमा बढ़ेगी।

सुवर्ण-द्वीप के प्रथम फाटक पर ही भगवान नामधारी नेता के मनुष्य अनुगामी रोक दिए गए। सिंह-रथ, रक्तासुर सारथी और भगवान द्वीप की राजधानी कनक-कोट में जिस समय प्रविष्ट हुए, उसी समय, पूरब में, अरुण रथ पर अंशुमाली आए। सहस्र-सहस्र पारदर्शी कर-जाल पसारकर। दिवाकर ने सुवर्ण-द्वीप से सूर्यलोक तक सोने का समूचा समुद्र लहरा दिया, जिसके ऊपर सोने का एक महान वितान तना था - आकाश।

सातों सिंह, हाथी-दाँत का उज्ज्वल रथ, रथ की गजमणियाँ भगवान नेता और उनका संधि-पत्र-ग्रंथित पीतांबर, सुवर्ण-द्वीप में घुसते ही, सोने के समुद्र में तिरोहित हो गए।

सुवर्ण-द्वीपवालों ने केवल रक्तासुर को देखा, जिसके हाथ में नाग-पाश था। उन्होंने उसी को विश्व-विजयी माना।

भगवान पर उनकी नजर न गई।

तीन दिन तक बराबर कनक-कोट के सुवर्ण नागरिक रक्तासुर को नमस्कार करते रहे। नौबत यहाँ तक आई कि चौथे दिन उसी को सुवर्णकुमारी भी मिलने को हुई। अब तो भगवान घबराए।

'रक्तासुर!'

'जी।'

'सुवर्ण-द्वीप के प्राणी तो मेरी ओर देखते भी नहीं, क्यों? विश्व-विजयी हूँ मैं, और पूजा हो रही है तुम्हारी!'

'इस द्वीप में केवल रक्त-रंग पहचाना जाता है।'

'और भगवान?'

'उहुँक। रक्त रंग के बाद विजयी की पूजा होती है। यहाँ वाले भगवान को बिलकुल नहीं जानते।'

'वह - सामने - सोने की सेना कैसी?'

'स्वर्णकुमारी आ रही हैं, वरमाला डालने!'

भगवान पीतांबर सँभालने लगे।

स्वर्णकुमारी कनक-कोट के प्राणियों के साथ स्वर्ण-पुष्पों की माला लिए आईं, और रक्तासुर की ओर बढ़ीं।

व्यग्र भगवान, झपटकर, बीच में आ रहे - 'यह विजयमाल मेरी है, भगवान मैं हूँ कुमारी!'

'कौन बोलता है, भगवान मैं हूँ?' साश्चर्य रक्तासुर की ओर देखकर स्वर्ण कुमारी ने पूछा - 'विजयी! यह वरमाला तुम्हारी है। हम लोग न तो इस बातुल भगवान को देख रहे हैं, और न यह स्वर्ण-माल ही इस मायावी के लिए है।'

कुमारी ने रक्तासुर की ओर हाथ बढ़ाया। रक्तासुर ने मस्तक झुकाया; स्वर्ण-सुंदरियाँ जय-जयकार करने लगीं। माला रक्तासुर के गले में चमकने लगी, मानो प्रवाल-पर्वत पर बिजली खेलती हो।

इस समय मनुष्यों के नेता भगवान ने, कराल करवाल के एक ही प्रहार से, रक्तासुर का मस्तक छिन्न कर दिया।

स्वर्ण-सुंदरियाँ चिल्ला उठीं। कुमारी तो बेहोश होते-होते बची। मगर दूसरे ही क्षण उन्होंने देखा, विजयी रक्तासुर ज्यों-का-त्यों खड़ा मुस्कुरा रहा था।

अब भगवान और रक्तासुर जमकर लड़ने लगे। अनेक बार महाबाहु मानव-भगवान के प्रहारों से रक्तासुर के मस्तक कट-कटकर गिरे, पर वह रहा अमर ही।

आखिर सुवर्ण-द्वीप में, स्वर्णकुमारी की लालसा में, रक्तासुर के हाथों नेता भगवान को बैकुंठ-लाभ हुआ!

और, मरते दम तक माता मनुष्यता का वह बीहड़ बालक अपने को भगवान ही समझता रहा।

उसी दिन से आज तक स्वर्णकुमारी रक्तासुर की अंकशायिनी है। रक्तासुर ही 'स्वर्णस्रष्टा' माना जाता है। यक्ष, नाग, किन्नर, नर आदि किसी लोक को जब सोने की चाह होती है, तब रक्तासुर के नाम की माला फेरनी पड़ती है। भक्तों की पुकार सुनते ही उदार रक्तासुर उनकी ओर स्वर्णकुमारी के साथ दौड़ता है। लोग अपने-अपने कलेजे का खून सहर्ष चढ़ाकर प्रसाद रूपेण उससे सोना पाते हैं, और आनंद-विभोर हो रक्तासुर की जय जयकार करते हैं।

और उस भगवान का कोई नाम भी नहीं लेता, जो माता मनुष्यता के एक बंगढ़-बालक के माथे में उदित होकर, चार दिन चमक-दमककर उसी में डूब गया।